गङ्गालहरी

डा. कमला पाण्डेय

गङ्गा लहरी गीर्वाण वाणी का वह रमणीय विलास है, जो अपनी लोकोत्तर वर्णना से सुधी जनों को आनन्द के प्रशान्त सागर की अतल गहराइयों तक ले जाती है। पण्डित राज जगन्नाथ की वह अमर कृति है, जो खण्डकाव्य होते हुए भी अखण्डैक-रस की धवल धार बहा ही है, रसगङ्गाधर का शिरोभूषण है, काव्य शास्त्रीय प्रज्ञा का रसावतार है, काव्य-प्रवाह और पयःप्रवाह का एकीभवन है, प्रेम की दलित द्राक्षा है, भक्ति का पानक पेय है, जगत् त्रास से त्राण का तारक मन्त्र है, स्वर्धुनी के चिन्मय चरणों में शरणागति है।

किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः।
कस्तूरिका-जनन-शक्तिभृता मृगेण।।[1]

पण्डित राज के उत्तम पाण्डित्य का पूर्ण प्रतिफलन गङ्गा लहरी में बड़ी सहजता से हुआ है। उन्होंने श्रीगङ्गा के स्वरूपत्रय (जलमय, अधिदैवत और चिन्मय) का ध्यान इस ललित कृति के माध्यम से जिस प्रकार कराया है, वह पाठक के चित्त को अत्यन्त उदात्त भावभूमि में प्रतिष्ठित करता है। महाकवि का तिरपन श्लोकों का यह गीतिकाव्य निश्चय ही देवधुनी का पूर्णावतार है, उनका अक्षर विग्रह है। इस काव्य की शिखरिणी ने संस्कृत कविता को शिखर तक पहुँचाया है, जिसके एक-एक मधुर पदविन्यास में उन गम्भीर भावों की अभिव्यञ्जना है, जो वास्तव में एक बड़ी कृति के विषय हैं।

स्वर्णदी का धरावतरण उस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से हुआ है जिसके लिए मन्त्रद्रष्टाओं ने ऋचाओं के दर्शन किये हैं, ऋषियों ने सामगान किया है, याज्ञिकों ने पवित्र आहुति दी है, अरण्यों में तत्त्वान्वेषण हुआ है, उपनिषदों का गूढ़ रहस्य प्रकट हुआ है। पण्डित राज ने ऐसी महनीया श्रीगङ्गा का जल, उसके जलकण, उसका प्रवाह, उसकी तरङ्ग, उसका तीर, उसकी मृत्तिका, उसका नाम स्मरण और सङ्कीर्तन, उसका दर्शन, उसकी कृपा को जिस तन्मयता से उकेरा है वह संसार के किसी भी साहित्य में प्राप्य नहीं। भगवती गङ्गा के पापहारकत्व, जगत्तारकत्व और सत् चित् आनन्दमयत्व गङ्गालहरी की कोमल कान्त पदावली में अहम् अहमिकया उपस्थित हैं। विष्णुपदी, ब्रह्मकमण्डलु विहारिणी और जटाशङ्करी की अप्रतिम छटा को वाक्तूलिका से रूपायित करने में तो पण्डितराज सिद्धहस्त हैं ही, उससे भी आगे उसे निराकार चैतन्यवारिधारा के रूप में चित्रित कर कवि ने चिन्तन का पाथेय दिया है और विश्वप्राङ्गण में सनातन ज्ञानप्रवाह का अवतरण किया है।

नदीमात्र की प्रतिनिधिभूता श्रीगङ्गा का जल देश विशेष की थाती नहीं, सम्पूर्ण भूलोक का सौभाग्य है, जिसके बिना वसुधा वसुन्धरा नहीं; सुजला, सुफला, शस्यश्यामला नहीं; जिससे परमेश्वर समस्त लोकों का निर्माण करते हैं। श्रीगङ्गा का जल वेदों की आत्मा है, श्रुतियों का सार है, पुण्यात्माओं की पुण्यराशि का तरल प्रवाह है, चिरजीवन सञ्जीवनी है, अमङ्गलों का विनाशक है। कवि ने इसी सुधासहोदर की महिमा गान से कृति का आरम्भ किया है–

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्
महैश्वर्यं लीलाजनित जगतः खण्डपरशोः।।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु।।1।।

कितना सामर्थ्य है इस अमृत सहोदर में! राजाओं की रमणियों के अङ्गराग के रूप में लगे मृगमद का स्नान करते समय जब गङ्गोदक से स्पर्श हो जाता है तो मृग सुन्दर-सुन्दर विमानों में बैठकर नन्दन वन की सैर करने लगते हैं।[2] स्वभावतः स्वच्छ और शीतल इस सलिलामृत की महिमा का गान तो स्वर्ग में स्थित सगरपुत्र आज भी पुलकित होकर कर रहे हैं–

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति।।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः।।16।।

इस तोयामृत का एक कण भी मानव मन के संताप का निवारक है–

हरन्तां संतापं कमपि मरुदुल्लासलहरि-
च्छटाचञ्चत्पाथः कणसरणयो दिव्य-सरितः।।26।।

श्रीकण्ठ शिव के जटाजूट में भ्रमणशील तोयामृत की तो बात ही क्या है। वह सभी तापों को दूर करें, यही कामना है–

स एव श्रीकण्ठ-प्रवितत-जटाजूट-जटिलो
जलानां संघातस्तव जननि तापं हरतु नः।।27।।

कवि ने इस विलक्षण जल से अपने जन्म मृत्यु के जाल को नष्ट करने की कामना की है–

जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु।।20।।

देवधुनी का पावन प्रवाह दरिद्रों की दीनता को दूर करता है। हृदय के दुरितों को दूर भगा देता है, अविद्या रूपी द्रुम (वृक्ष) को उखाड़ फेंकने वाला दीक्षा गुरु है। ऐसे वारिप्रवाह से अपार वैभव की कामना कवि ने इस प्रकार की है–

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदुपगतो दृष्टिसरणिम्।।
अपि द्रागाविद्या-द्रुमदलन-दीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः।।2।।

प्रवाह की ही भाँति स्वर्धुनी की उत्तुङ्ग तरंगें भी दुरित भय को भङ्ग करने में निपुण हैं–

तरङ्गाः प्रोत्तुङ्गा दुरितभयभङ्गाय भवताम्।।3।।

अर्थात् पापों से उत्पन्न भीति को दूर करने में ये ऊँची-ऊँची लहरें सदा प्रवृत्त हैं। इन लहरों की कलकल को जो कान नहीं सुनते उन्हें धिक्कार है, जो आँखें इन तरंगों से सुशोभित देवनदी के दर्शन नहीं करती, उनका होना न होना बराबर है–

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः।।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो
र्यो नान्तर्यातस्तव लहरिलीला-कलकलः।।32।।

पापापहारिणी की जलमयी मूर्ति सभी देवताओं द्वारा पूजनीया है। उससे अन्तः सन्ताप और त्रिविध ताप

निवारण की आकांक्षा कवि ने इस प्रकार की है–

इयं सा ते मूर्तिः सकल-सुर-संसेव्यसलिला
ममान्तः सन्तापं त्रिविधमपि तापं च हरताम्।।5।।

दर्शन मात्र से संसार के भय को दूर करने वाली, इस दिव्य सरित् के तट पर वास और पयः पान के समक्ष तो राज्य का सुख और मोक्ष का आनन्द दोनों हास्यास्पद प्रतीत होते हैं–

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद् वानीरं तव जननि! तीरं श्रितवताम्।
सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्तिपिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्।।6।।

यह पवित्र तीर करटों को, कौवों को इतना सन्तोष प्रदान करता है कि इन्द्र का उद्यान भी उन्हें इसके समक्ष तुच्छ लगता है।[3] इस तीर के वृक्ष अपने खिले पुष्पों के मकरन्द को विखेरते हुए मूर्ख मनुष्यों का मानो इसलिए उपहास करते हैं कि गंगातीरवासी हमारी तो सुन्दर गति होगी, जो मां गंगा से दूर हैं उनकी दुर्गति होगी। वे वृक्ष अपने पुष्पपराग से नित्य मलिन अर्थात् काले भौरों को पवित्र करते हैं–

पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो नः सन्तु त्रिदशतटिनी तीरतरवः।।43।।

सुरधुनी गङ्गा की मिट्टी की भी महिमा अपार है; वह कोई साधारण वस्तु नहीं, अपितु जिसके भालदेश पर तिलकित होती है उसके अन्तर्मन के अन्धकार को दूर करने के लिए मध्याह्न के सूर्य के समान प्रकाशमयी है, वह उस ललाट में ब्रह्मा के द्वारा लिखे गये दुर्भाग्य को तत्काल मिटा देती है–

विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखित-दुर्वर्णसरणि
त्वदीया सन्मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्।।42।।

वैसे तो स्वर्ग की नदी के सहस्रनाम हैं, किन्तु उनका सबसे प्यारा नाम है–गङ्गा। इस श्रुतिसुखद गङ्गा शब्द के कान में पड़ते ही मनः शान्ति प्राप्त होती है, पापों का नाश होता है और समस्त भौतिक तापों का लोप होता है। अतएव यह मधुर मङ्गलमय नाम मृत्यु के समय मुख से निकलता रहे–यही भक्त हृदय की कामना है–

इदं तद्गङ्गेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
मम प्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु।।8।।

क्योंकि गङ्गाभक्त को यह तत्त्वबोध है कि उनके नाम स्मरण मात्र से जगज्जाल तिनके के समान तुच्छ हो जाता है, उसे काटने में कोई परिश्रम नहीं होता। क्योंकि कलिकाल में नामोच्चारण से ही मोक्ष-लाभ हो जाता है। अतएव यज्ञ, तप आदि कठोर साधना की आवश्यकता नहीं–

अहं तु त्वन्नाम-स्मरण-मृतकामस्त्रिपथगे
जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम्।।44।।

इसीलिए देवधुनी की अहैतुकी कृपा की आवश्यकता है, क्योंकि वही महापापियों के उद्धार के लिए सदैव प्रयत्नशील है। बड़े से बड़े पापों को चूर-चूर करने में वह कभी भी नहीं थकती–

हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे।।13।।

पण्डितराज ने श्रीगङ्गा के निराकार स्वरूप का जितना ललित ललाम चित्राङ्कन किया है उतना ही अभिराम उनके अधिदैवत रूप को भी बनाया है। श्रीगङ्गा का दैवी रूप शरत्कालीन चन्द्रमा के समान शुभ्र है, चन्द्रकला और श्वेत सर्प का मुकुट मस्तक पर सुशोभित है, एक हाथ में कुम्भ, दूसरे में कमलपुष्प, तीसरा वरद मुद्रा में और चौथा भय निरास करता हुआ है। वे सुधा धारा के समान सफेद आभूषण एवं वस्त्रों से देदीप्यमान हैं और शुभ्रमकर पर बैठी हैं। श्रीगङ्गा के इस उज्ज्वल स्वरूप का जो ध्यान करता है उसका कभी भी परिभव (अवनति) नहीं होता–

शरच्चन्द्रश्वेतां शशिशकलश्वेतालमुकुटां
करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ च दधतीम्।
सुधाधाराकाराभरणवसना शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां ये ध्यायन्त्युदयति न तेषां परिभवः।।48।।

यह वर्णना नीराकार से प्रारम्भ होकर साकार हुई और निराकार में पर्यवसित हो गई। वास्तव में श्रीगङ्गा के तात्त्विक स्वरूप को वेद भी नहीं बता पाते। मन और वाणी भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, जो अपनी महिमा से अज्ञान रूपी अन्धकार को स्वयं दूर करती है ऐसे माया मल से रहित अद्वितीय चित्स्वरूपा गङ्गा ब्रह्म स्वरूपा हैं–

न यत्साक्षाद् वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः।।
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि! तत्त्वं न विषयः।।10।।

गङ्गालहरी में विष्णुपदी, जटाशङ्करी, त्रिदशतटिनी की ताण्डव विधि[4] का वर्णन करते-करते कवि ऐसे उत्कृष्ट भावलोक में पहुँच जाते हैं जहाँ स्वर्णदी के मातृत्व की अमल-धवल ज्योत्स्ना का विस्तृत वितान है, वात्सल्य का प्रवाह पूर है, निर्व्याज करुणा का विगलन है, स्नेह की आर्द्रता है, रुग्णता के उपचार की व्यवस्था है, तृषा (प्यास) को दूर करने की महौषधि है–

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गदविगलितः सिद्धभिषजम्।।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम्।।24।।

माता और पुत्र दोनों अपने-अपने स्वभाव से नियन्त्रित हैं। यदि एक का व्रत है, पापों का प्रक्षालन करते रहना तो अपर की नियति है पापों को करते ही जाना। परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों की यह मिथः सापेक्षता त्रैलोक्य दुर्लभ है–

भवत्या हि व्रात्याधमपतितया खण्डपरिषत्
परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा।।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः।।37।।

पण्डितराज का हृदय शिशु माँ के पयःपान से सन्तुष्ट नहीं, वह तो मृदुल पवन के सञ्चार से शीतल गोद में शयन का इच्छुक है, लहराञ्चल में चरम विश्रान्ति का आकाङ्क्षी है–

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै
र्विमूढैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम्।।
इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसंचारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम्।।46।।

और अन्ततः पण्डितराज जगन्नाथ ने श्रीगङ्गा को पापोद्धार की चुनौती दे ही डाली। उनके अनुसार यह किसी साधारण पापी के तरोतारण का प्रसङ्ग नहीं, अपितु अत्यन्त पापिष्ठ के उद्धार का कठिन कार्य है; जिसमें पापापहारिणी को भी कमर कस के, मुकुट को दृढ़ कर लेने की आवश्यकता है–

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणधिया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः।।47।।

इतने गम्भीर विषय के इस संक्षिप्त विवेचन में इतना ही कहा जा सकता है कि गङ्गालहरी में कवि ने मुक्तिदायिनी से मुक्ति की जो भावुक अभ्यर्थना की है, वह कमनीय कविता के इन्द्रधनुषी आलोक से उज्ज्वल हो उठी है; माँ की सान्द्र कृपा से आर्द्र हो गयी है, दुरित ध्वंस और आर्ति भञ्जन के लिए चञ्चल हो उठी है। श्रीगङ्गा की यह पीयूषलहरी हमारे तन-मन-प्राण को इसी प्रकार आप्यायित करती रहे–

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा
सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा।।
मनोहरोत्तुङ्ग-चलत्तरङ्गा
गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु।।52।।

।। श्रीगङ्गार्पणमस्तु ।।

सन्दर्भ–

1. रसगङ्गाधर प्रथम आनन श्लोक 6
2. गङ्गालहरी 7
3. वही 9
4. वही 21, 22, 38, 40

• • • • •